

B.A. Part 3
भ्रमरगीत-सार

व्याख्या: पद सं. 6

मी लुहन उहूल ले कहो हूँ — तो मित्र ! मेरी एक बात लुनो।
बवं में ज्ञान की लुगाओं (जुरायुदों) गों कुड़ि करती डोपियों को
याद आता हूँ तो बहुत दुःख दोता है (कि मैं उस आनंद ले
वांचते होकर पहुँच गया थाई में पढ़ उड़ा हूँ)। इस मधुरा नगरी
वह उत्तीर्ण छुंदरी वृषभानु की काहा रथा कहाँ मिलने वाली ?
उल्के लंग रास के आनंद को धाद कर गोरा भी अकुलाने
लगा जाता है श्रीमृतज्ञ को इस प्रकार सोहगस्त देखकर उहूल
कहने लगे — 'तुम्हारा यह प्रेम लदा नहीं रहेगा। यह नशरे
है। पूरा दसार मिथ्या है।' हे सुर के प्रसु (खामी) श्रीमृतज्ञ
मेरी बात लुनो कि केवल एक ब्रह्म से ताता ही सन्ध्या नाम
है।

व्याख्या पद सं. 9

मी लुहन उहूव ले कहते लगे — "हे परिवर्त ! तुम ज्ञान में जानक
संदेश कहते कहो कि इस दोनों गाँड़ वापस आ रहे हैं। माता
अपोदा तनिक जी चिंता न करें। (बलराम सहित)
इस दोनों को यह बात बहुत खटकी है कि आपने युद्ध को इमारी धाय (केवल पालने वाली)
करा। मौं नहीं। इस दोनों तुम्हारी मादिमा क्या कह पाएंगे?
अर्थात् नहीं कह पाएंगे। दूध बिलाकर तुमने हमें वडा किया।
ओर, नंदमाथा के वैरा घटाकर कहना कि इमारी दोनों
धूमरि (कोरी) जींदे धौती (सोने) रायें छिक्कन दुःख म पावें
अर्थात् उल्लम रुग्माल धविला, वे गाये हों वहु ज्ञानी हैं।
यद्यपि इस मधुरा नगरी से शुण-खुलिया वही लोंग लाली नहीं
पर, आप लोगों के लिया यहाँ कुछ आनंद नहीं लगता।
सूर जीव कहते हैं कि अब तोनों जाह्नवों के दृद्ध तजी बात
होंगे जब वे श्रज बासियों से भेट करेंगे।

ઓ તરુણ ! મોં ચશોદા હે કદના તુમ અચે હે રદના ।
 —વાર-પાંચ દિન મેં મૈં આઈ દભદાર (બલરામ) શૈયા બજ આ
 જાઈંગો । જિસ દિન વે લસ તુમસે વિઠુંકે હોય ક્રિસી ને ઘાર
 સે કન્ફોર્મ નહીં કરા । શાર્દ મેં સબ કૃષ્ણ કદકર છુકારોની,
 (ની ઘાર, જો એટ વર-ગાંધી મેં વ્યાકતી પાતા હોય વિદ નારીય
 સ્વામી જીન મેં કુલજી હો હો) ન સરોટ કલેક્ટ કિયા ન
 સિલેક્ટર્સ ગામ કે થન વે મુંદ જગાન્ના દુધ પિયો ।
 (શ્રામીણ જીન મેં એક ખુલાપન રહત હોય નગર કે દિયાવતી
 ઓપ્પારેક સમી વાતાવરણ મેં મનુષ્ય અપની નૌકરીની સ્વ-સુંપણા
 વ્યવત કરને મેં લાલોં કરતા હોય । એદી અભિપ્રાય હો)
 મેરી વંશી જી લંબાલ કર રહીએના । જાણી હોસા ન હો
 મૌલિક પાકર રાધા આવે આઈ તથે ચા દુખરે જિલ્લોનોં કો
 પુરા લે જાઓ । નેબાબા એ થદ જી કદના જાવટ કિ
 વે તો બહન છી લિષ્ટર નિકાલે । અપને રઘુમ કો મધુર
 પંદુંધ. વિદા, લોકીન તોબાર કાંઈ હાલચાલ જી નહીં લિયા ।

विशेष अध्ययन

प्राचीरकीत सारे पद व्याख्या हैं। 108

शिल्प के विषेष में गोपियाँ किस मानसिक प्रिया से गुजरं रही हैं तो वहाँ में उड़व को बताते हुए वे कहती हैं - "उड़व। इन तो बिल्कुल आनाम हो गई हैं यानी संसार में हमारा जो न है वो बिना छोटे के मध्यमपाठी भी नहीं है। क्यन्तु से ही हम सबने अनधर कपी आमते की पास को संजोया था। सुफक्त सुते यानी भक्तूरजी हमारी उस दीर्घकालीन धरोहर को (कृष्ण को) हमले छिन ले गये। हमारे साथ यह ऐसा अन्धाय उआ कि सहसा आँखों के विश्वास न उआ कि इन आँखों के देखते-देखते उपर उम्हे दूर चले गये। हमने दौरों से अपनी आँखें मल - मल कर देख कि वर्षा चढ़ रही है? आँ, जब हमने दौरों को दृश्या तब तक तो हरि (कृष्ण) काफी दूर चले गये थे, उसी समय रथ के पाइयों से धूल उड़ाकर उन्होंने आँखों के आगे आँट अंधोरा कर दिया (ताकि हम उन्हें दौड़कर न रोक सकें।) इस समय हमने कंपुसों जैसा प्रवाहर किया। जैसे कंपुस अपना धन खुटा कर रखता है आँट खुखभोग भी नहीं करता वहसे ही हम गोपियाँ भी कृष्ण को 314ना अमृत धन समझते संजोइ रखी थीं। तभी उन्होंने उनके साथ खुख भोग न कर सकीं। जब वह दूजा आगा भी तब कृष्ण हमले बिस्फुट गये। सूरक्षा कहते हैं विद्याता ने कृष्ण को कुब्जा (कुबड़ी) के मुख के ही कावित्य बनाया है तो हम कर भी वर्षा लकड़ती हैं। इन पांकियों में उलाइना का रवर है। गोपियाँ वादा नाहती हैं कि वही कुब्जा कृष्ण को भाई है जो किनी प्रकार सुंदर तहीं। ग्रेमी लोग प्राप्त इसी आँट प्रतिकृष्टिल में रक्षित की जमतर बताते हैं।

इन पांकियों में रक्षेष अलंकार भी है। इनका इसी रह भी है कि कुब्जा अपने मुँह से उन्हें घोग साधारण के प्रवर्णन हुआती होगी। छारे घोग को विज्ञाप कुब्जा का रक्षा-सूखा घोग ही उन्हें अच्छा लगता है तो यह भोग ही उन्हें सुखाए। इस प्रकार गोपियाँ उड़व को भी उलाइना देती हैं जोपेंकि उड़व भी घोग-मार्गी थे और कृष्ण हारा गोपियों को घोग विधा सिखाने ब्रज भ्रजे गये थे।

भ्रूमरवीत सार : पद व्याख्या सं. 109

है उद्घृत ! कृष्ण के कहने पर तुम हो योग विज्ञाने ब्रज तक चले तो आपे हो, पर भय ब्रज की दशा का तो ख्याल करो । (यहाँ वी समस्या ही कुछ और है जो तुम समझते नहीं और वस अपने योग का उपदेश सुनाते जा रहे हो ।) पहले तुम ब्रज का दृढ़ तो समझो । तब जाकर योग मार्ग की बातें समझाना । अपने अपने मन पुनः विचार करो कि किस लारा नंदनंदन ने हमें पहाँ भेज दिया । कहीं देख तो नहीं कि इन्होंने हम गोपियों की विरह-व्यथा को समझकर कुछ दिलाखा देने के उद्देश्य से हमें भेजा हो । तुम श्योम के करीबी हो, उनके परम भिन्न हो, देश उनके निकट रहते हो । तुम्हें तो कृष्ण के मनताप को समझने में कोई भ्रूल नहीं लगी चाहिए । तब शी तुम जल में झूँकते हुए व्यक्ति को फेन (झाग) पकड़ रहने को लोब रहे हो अर्थात् विरह ले दुःखी गोपियों को धोगायाम बरता रहे हो अर्थात् विष्णुल मूर्खता की बातें कर रहे हो । वे कृष्ण फिरने हुंदर और मनोहर हैं । हम कैसे उनका मनोहर मुण्ड (आनन) भ्रूल जाएँ ? योग की समस्त विधियाँ और मुक्ति (ब्रह्म की उपलब्धि) हम उस मुरली पर कुर्बान फर देंगी । हमें योग और मुक्ति का विष्णुल छोभ नहीं । जिसके हृदय में उपासनुदर बसते हों वो निर्गुण के पास क्यों जाएगा ? (निर्गुण मत का संबंध योग-मार्ग से है । इसके अनुसार ईश्वर निराकार है । संसारिक प्रेम अनित्य है ।) यानी कृष्ण की हुंदर मुखाकृति को छोड़कर कोई निराकार की अदृश्यता आवश्यक हो करेगा ? सूखदास कहते हैं कि उस व्याप्ति को अपनी आवश्यकता अर्थात् अजनन को ह्याग देना चाहिए, जिसे व्यपने उपास्य को छोड़कर कोई इस्तरा अच्छा लगने लग जाय । यानी, सच्ची आवश्यकता अनन्य होती है । उलझी ने कहा है कि चातक भले प्यास से मर जाये, लेकिन रुकाति नक्षत्र के अलावा वह कभी खें नहीं करता । उलझी ने उलझी को एक राम पर ही विश्वाम है—
 एक भरोलो एक जल एक अम विश्वाम ।
 एक राम वानेमाम इति चातक उलझीम ॥

भुमरमीतसार पद व्याख्या. सं. 114

है उद्घव! तुम कभी समझदार हो।

मुझे यह जलने की जरूरत हमें नहीं पड़ती -पाइट कि ~~शास्त्रों~~ काले हों क्रें पर दूसरा हो नहीं -पड़ता। शास्त्र के प्रेस में इनी गोपियों को योग विद्या किसी प्रकार नहीं संतोष देती। (महां प्रेस की स्कॉनिज्ड तारीख भूतन्तता आभिप्रेत हो)

कवियों (गोपियों) ने वेदों में ~~कष्ट~~ कि सूर्य और चंद्र को परमपुरुष की दो आँखें बताया है और दोनों की मादिमा एक रुमान गारी है। आनी दोनों समान महत्व के हैं लेकिन, -प्रकार दोनों को समान महत्व नहीं देता। -प्रकार ने उन दोनों में से एक को ही अपना प्रिय नुना - पंडिता को। सूर्य को उत्तरे दुर्बन्ध ही समझा, वर्षोंकि दिन में वह अपना झेंग नहीं पा सकता। फिर एक -प्रकार जो सामान्य पक्षी है उसे भी प्राप्त है किसी वस्तु में उसका द्वितीय है यह किसमें नहीं। आवं यह है कि परमार्थ सत्य एक बात है और वावशारिक सत्य दूसरी बात है। परमार्थ की हृषि से उद्घव का ब्रह्मज्ञान विल्लुब्ज ठीक है, किंतु गोपियों के लिए वह ब्रह्मज्ञान एकदम फिल्हल है वर्षोंकि वे उसी व्रक्ष के अवतार कृष्ण को प्रेस-मार्ग में पा चुकी हैं।

इसाति गोपियाँ उद्घव के कहती हैं कि हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं; हमें हमारे हाल पर छोड़ दो। हम विरह में ही सुखी हैं। हम विरह के गीत श्रगा के जीवन का लोंगी लेकिन ब्रह्मानन्द हमें नहीं -चाहिए; उसे तुम अपने पास रखो।

हम तुम्हारी लौहीन नहीं कर रही हैं। सबका अपना स्वभाव होता है। स्वभाव के ~~विश्व~~ किसी से अवश्यकी कुछ बर्तन जोना आसान है। ~~लोकिनि~~ हमें उसे कुछ ही चिक्केगाम मेंठक खल के बिना भी जी लेता है। हवा में आनी वातावरण में भी वह सरता नहीं लोकिनि यही काम भूली हो नहीं करता जो सकता। अर्थात् जो तुम्हारे ब्रह्मज्ञान को समझने वाले रखता हो उसे जानकर पह जान दो। हम कृष्ण के बिना कैसे ही नहीं जी सकतीं ऐसे भूली मधली पानी बिना नहीं जी सकती। समृद्ध आकर्ति हमारा प्राणाधार है। इसे छोड़ कर हम निर्गुण, योगमार्ग को विकल्प की ओर नहीं अपना सकतीं। हमारा प्रेमयोग ही हमारे लिए समान्तर लिखित रास्ता है।

हमारे नयन खींची और कब कृष्ण के मुख खींची कमल का रक्षण
आनी छु दर्शन करेंगे, इसी अभिलाख में हम जी रही हैं।
शूद्रकां कहते हैं गोपियों की अद प्रतिशा है कि वे उस वीरान
पाती रखे-खुजे योगमार्गी ब्रह्मज्ञान को छुड़नी भी नहीं। 'वीरान'
का एक अर्थ बेगाना या पराप्त भी होता है। अर्थात्, योग की
बातें हमारे लिए पराप्ती नीज़ भौति हैं। हमें उससे कोई अपनापा
या अंतरेंगत की अनुभूति नहीं होती। एक ही शब्द से तो अर्थ
दोनों से यहाँ श्वेत है।

अमृहीतासार पद व्याख्या शं. 116

छहूत! हम गोपियों आजानी और आली भाली हैं।
तुम्हारी ये योग की बातें मगर की चतुर युक्तियाँ ही समझ सकेंगी।
सोने का द्विन किसने देखा है? मान लो इति ने देखा भी था।
पर क्या वह सचमुच सोने का था? वह तो मिला ही नहीं!
वैक्ष द्वी तुम्हारा निर्जन ब्रह्म है—निराकार, निरिलार, अजन्मा।

बताओ मधुकर! पाती की मंथन से आज तक किसी ने भक्षण
निकालार अपनी टोकरी भरी है? क्या कभी किसी बिना दीकार
का पहल पित्र उकोरा है? क्या कभी किसी ने आकाश को
अपने झोले में रख लिया है? जित्यकी जिद है कि वह भ्रूः
ही पछोरेगा वह कभी उसमें से अन्त के दाने निफाल सजाता
है?

हुमें हमें ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर कुछ ऐसा ही आप १२८
रहे हो। तुम्हारी पद दोशियारी हम अबलाओं की समझ के
बाहर हो दमारी हुड़ि थोड़ी-सी है। हुम इसी हो। हो सकता है
तुम्हारा किष्य बहुत कठिन हो और अल्प पुड़ि के बारे हमें
समझ न आ रहा हो।

सूर कहते हैं कि कृष्ण के मुख रवी चंद्र को ही हमारी
अङ्ग रवी चंद्रों सर्वे निरथते रहते हैं। उसके अलावा हमें
न कुछ दिखाई नहता है, न समझ में आता है।

पद व्याख्या सं. 125

शोधियों की योग विद्या वातों से उद्धृत का पेहरा उत्तर जय; तब शोधियों ने मानो उसे सांत्वना देते हुए उपाप सुक्षमा कि, है उद्धृत! उस जट्ठी से मधुरा निपल जाओ। आपनी योग विद्या की छ गठी संभालो और वहाँ बैठने का प्रयास करो जहाँ ते उम्हें भी चार पैसे का भाव है। (व्योमि पहाँ ब्रज में तो उम्हारे योग को कोई कौड़ी भाव भी नहीं पूछता।)

हम तो विरहिणी स्त्रियों हैं। सिवाय श्रीकृष्ण के हमारा नहीं निर्वाह नहीं हो सकता।

उस अपनी योग विद्या का लौटा वहाँ करो, जहाँ कम-से-कम उम्हारा भ्रूल-धन ते निकल जाए। और, अंभव हो तो कुछ मुनाफा भी हो जाए।

थादि ब्रज में नहीं बिल सका ते नगर की स्त्रियों को इ एक बार दिका दो अपनी यह ब्रह्मविद्या। क्यों अपने जी में पछताते हो? इसे तो लगता वे सुनते ही उम्हारी योग विद्या को खरीद लेंगी।

व्याख्या 130

निरुण ब्रह्म के उपासक योगी कहते हैं "योगश्चन्तवृत्ति निरोधः"। थनी निति (मन) की वृत्तियों (भावों) को निरुद्ध (निपत्रित) करना ही योग है। भानी योग मन को साधने की विद्या है।

प्रख्युत पद में शोधियों उद्धृत से तर्क करती है—
"हे उद्धृत! हमारा मन हमारे हाथ में नहीं है। श्रीकृष्ण मधुरा को प्रस्तुत करते समय हमारा मन भी अपने हांगे ले गये। (भाव यह है कि मन सदा श्रीकृष्ण के स्मरण में ध्यान में लगा रहता है।) अब मन हमारे पास है ही नहीं तो हम योग विद्या का प्रयोग किस वर्खु पर करें?

करना क्या हम तुम्हारे द्वारा इतने चाव दे लाया हुआ योग और प्रह्लादानं छक्कय सकती भी? ~~इतने~~

हमें हमसे कोई शिकायत नहीं। हम तो श्याम की करनी पर खीझते हैं कि योग भेजा भी तो, मन अपने पास रखकर।

जब योगियों की शिक्षा में भी तो मन वा
लौट देते।

इस जी अगर हमें हमारा मन वापस मिल जाए तो तुम्हारी
करोड़ों कासमें खाकर नहीं हैं कि जो कहाँगे हम करने
के लिए तैयार हैं।

गोपियों की इन व्यंग्य भरी डाक्टियों का उच्छव जै ब्रह्मवत्ता
के पास कोई उत्तर नहीं था।

ठाण्डा: 134

है उच्छव! अरे इन युक्तियों को एक नज़र देखो तो सही।
तब जाकर अपनी योग की गती हमारे ~~आस्ते~~ आगे फैलाओ।
(आव यह है कि सामान्य व्यापारी जी ग्राहक देखकर अपने माल
का लिंग करता है।)

जिन केशों को शपाम क्षेत्र स्वप्न व्यापते हाथों से सुगंधिपूर्वक
सजाते संवारते थे, उन्हीं बालों में तुम अशृत लगाकर जटा बांधने
की शिक्षा दे रहे हो? याती हमें योगी बनने का उपदेश झाँड़ रहे हो?

जिन चेष्टों पर कथ्यरी और चंदन उबटन लगाया करते थे और
क्षण-शृण में धोया करते थे, उन्हीं मुखों पर तुम राख मलने को
कहते हो। यह सब हमें उच्छ्वास लागेगा?

जो तेज देशा काजल लगाकर शपाम रूपी चंद्र के दर्शन
के अभ्यासी रहे हैं उन नेत्रों को तुम तपोनिष्ठ योगियों
की तरह खुर्फ़ को घूसे को कहते हो? यह लुन-लुन कर
हमें बुझा कर देता है।

इस प्रकार गोपियों उच्छव के ब्रान्योग की प्रज की
ऐसमूर्मि पर अयुक्तिभुक्त व्योषित करती हैं। वे अपने प्रेममार्ग
में ही संतुष्ट हैं। न केवल संतुष्ट हैं, बल्कि उसी मार्ग
में मर-मिटा उच्छव स्वीकार है। उच्छव गोपियों की यह
एक निष्ठा देखकर निरुत्तर रह गये हैं।

मीराबाई पद सं. 50

पिया महो नैजो आगो रहजो जी।

नैजो आगो रहजो महो गूल हा जाजो जी।

ओ सागर मह लूङ्गा नाहो शगाम को सुध लीजो जी।

शाजा जोज्या विष रो घालो थे इमरत कर दीजो जी॥

हे प्रिय (श्रीकृष्णजी) मेरी आँखों के आगे (अर्थात् सामने) रहिए
(भी सामान सूचक होने के साप-साप अनुप्राप्त का दोषी भाने के लिए
प्रयुक्त है)।

आँखों के सामने राहिए। मुझे (किसी भी हाल में) भूल ना जाइएगा।

अब सागर (संसार की उल्लंघन प्राप्ति सागर से को जाती है जिसकी लाइरों
रही सामा में असंख्य मनुष्य डूबते उतरते रहते हैं। इस सागर
को छार करना मुक्ति का प्रतीक है।) में मैं डूबी ही नाहती हूँ
(अर्थात् डूबने की वाली हूँ। यानी अब गोते खपति नहीं कि ज्यादा
तेर सूखूँ। धौं जावपिनी अपने जीवन उंधरी में अलोली लड़ते-
लड़ते निराशा का अनुभव करती है। जब अबत असहाय अनुभव
करता है तो उसे अपने इष्ट (उपास्य) की जाद आना सहज है।)
हे शपाम (मेरी) सुध लीजिए। यानी मुझ पर कृपा कर द्यानदृष्टि
जालिए। इस दंष्टि में 'को' के खपन पर किसी किसी पाठ में
'बोगी' शब्द आता है। यानी वे ग अर्थात् तुरंत मेरी सुध लीजिए।

शाजा (मीरा के सामाजिक दृष्टि से पाते) ने विष का अपाला भेजा
है। हुम (वे) उस प्याले को अमृत कर दो। (अक्त संसार और
उपास्य को एक-दूसरे के विरोध में देखते हैं। सामाजिक बंधनों से
मुक्ति की कामना में वे अपने उपास्य की ओर प्रवृत्त होते हैं।
विष का अमृत दोना यही विरोध-गाव है। व्यावर्तिका और पारसार्पिक
सत्ताओं में विलोम संबंध होता है।)

मीराबाई पद ८- ५१

(है सर्वी !) तुझे छपा-ब्या कहकर समझान् कि वह साँवखा^{रा} गिरधारी ही (एकमात्र) मेरा (प्रिय) है।

(कृष्ण की ओर मेरी) प्रियि पूर्वजन्म से है। (है प्रियि कृष्ण !)
मुझे छोड़कर मत जाइए।

(उस) स्याजन का खुँकर मुखड़ा (बदन=मुख) (इतना मनोहर है कि) देखते ही बनता है। (मैं) तुम्हारी मनोहर छवि पर न्योधावर हूँ।

है श्याम ! हमारे घर आइए। अपके इवागत में नारियाँ मंगलगान गा रही हैं। अपने आँसुओं रूपी मोतियों ले (मैं), औक पुरा हुआ है। (औक पुराना एक लोक परंपरा है, जिसके अंतर्गत हल्की इच्छादि शुभ समझी जाने वाली बल्लुओं द्वारा औक प्रत्येक है) मैं अपना तन-मन (अपति सर्वस्व) तुम पर वारे डालती हूँ।

(तुम्हारे) चरणों में ही मेरी शरण है, मैं उन्हीं चरणों की दाढ़ी हूँ। अन्म-अन्म ले कुँवारी हूँ। (अथवा तुम्हारे अतिरिक्त कोई मेरे वरण नहीं कर सकता। मैं अनन्य भाव ले तुम्हारे प्रति समर्पित हूँ।)

मीराबाई

पद छंडा-52

देखो माझे हरि मण काठ किपां ॥
 आवण काह गर्घां अजा ण आपां कर महाणे कोल गर्घां ॥
 खण पाण सुध बुध सब बिसइयां काँई चारो प्राण जिपां ॥
 थारे कोल बिनद जगा थारे, थे काँई बिलर वायां ॥
 मारं रे प्रभु गिरधर नगर थे बिन फटा हियां ॥ ५

इस पद में मीरा ने अपनी उत्कृष्ट विरह वेदना व्यक्त की है। मीरा की आधिक भावना माधुरी भ्रेषी की है। इसके अपने भक्तों ने इसने उपास्य के साथ मुख्यतः तीन प्रकार के संबंध स्पृष्टि किए हैं— ① दास्य ② सर्व्य और ③ माधुरी। यानी भक्त बनी तो अगवान के दास के रूप में कभी मिश्र रूप में और कभी भ्रेषी के रूप में खुद की भावना करते हैं। मीरा ने कृष्ण को पाते रूप में कल्पित किया है।

पद गाते हुए मीरा कहती है— देखो माँ! हरि (कृष्ण) ने अपना मन (हृदय) कठोर कर लिया है, उसे मुझ पर दफा नहीं आती। ॥

आने का वचन दे गया था, किन्तु अब तक (या आज तक) नहीं आया। बस मुझे वचन (कोल) देकर चला गया कि अवश्य आङ्गांगा ॥ २
 मैं खाना-पीना और सुध बुध खो बैठी हूँ, किस प्रकार मेरे प्राण अब जियेंगे? यानी अब मैं कैसे जीऊँ? ॥ ३

आने का वचन तुम्हारा है, संसार में तुम्हारी प्रसिद्धि (विनाद) है, यानी तू संसार में इसलिए विरहपात है कि भक्त के पुकारने पर तू दौड़ा चला आता है। तूने महलाद की रक्षा की, द्रोपदी की लाज बचाई। अपने लोकरक्षक गुण के कारण ही तू प्रति दुनिया में पूजा जाता है। तू कैसे अपनी धावि के विहृत आन्परण कर रहा है? अगर वचन दिया है तो उसे निभाता क्यों नहीं? तू मुझे कैसे भ्रल

मीरा कहती है कि मेरा एक ही स्वामी है, पर्वत को अपनी अंगुली पर उठा लेने वाला गिरधर कृष्ण ही मेरा प्रभु है। नगर का अर्थ है चतुर या समझदार। यहाँ लंगपार्व यह है कि बृह्ण भक्तों के लिए बड़े-से बड़ा कष्ट उठाने के लिए तैयार रहते हैं और अपने भक्तों के सब पुण्यों को भली-बाँति समझते हैं। अपनी इस मीरा कहती है कि है कृष्ण! तुम्हारे बिन मेरा हृदय वेदना से फता खा रहा है। ॥ ५

योगिया से प्रीत लियाँ दुख होई। (1)

प्रीत किमाँ सुख ना मोरो सजनी, योगी मीत ना कोई। (2)

रात दिवस कल जाहि परत है, तुम मिलियाँ बिन मोई। (3)

ऐसो शूरत या जग माँडी, केरि न देखी सोई। (4)

मीराँ रे प्रभु कब हे मिलोगे, मिलियाँ आँण्ड होई। (5)

योगी से प्रीति करने पर दुःख ही होता है। (1) मीरा कहती है कि योगी तो वैरागी होता है, उसे प्रेम और लगाव दे क्या मतलब? संसार से मोह समाप्त कर लेना तो योगी का स्वभाव होता है। ऐसे योगी (कृष्ण को योगिराज भी कहते हैं) से प्रेम करने का इंद्रिय मीरा ने अगर ले ही लिपा है तो अब दुःख ले कैसे बचा जा सकता है? यहाँ उलाहने का भाव है। मीरा कृष्ण के प्रति उपालभ व्यक्त कर रही है कि उन्होंने आज तक इस दासी को दर्शन करो नहीं दिये?

हे सच्ची! वैसे तो प्रेम करने पर ही सुख की आशा छोड़ देनी चाहिए, अपर से योगी से प्यार! योगी तो किसी का मीत नहीं होता। वह तो पूरा का प्ररा निर्मलि होता है। इत्यतिष्ठ मीरा की काठिनाई दो गुनी हो जाती है। उसने प्रेम किया। और किमा भी तो किसी आम दुनियादारी वाले इसान से नहीं। कृष्ण से कर लिया। अब दुःख की कोई सीमा नहीं। (2)

तुम्हारे मिले बिना मुझे रात या दिन कभी कल नहीं पड़ती। मानी कभी चैन नहीं आता। (3)

जैसी तेरी (कृष्ण की) शूरत है वैसी मैं इस दुनिया में दोबारा कभी और कहीं नहीं देखी। (4) मानी कृष्ण के प्रति मीरा का लगाव अनन्य और अद्वित है,

हे प्रभु! तुम कब मिलोगे? मिलने पर ही आनंद संभव है। (5)

Note: मीरा की विरुद्ध वेदना में स्त्री के सर्वसामान्य दृश्यों की व्यंगना निहित रहती है। भक्त कवियों की कविता में स्थामाजिक व्यवस्था के प्रति या तीजा असंतोष और विक्रोह रहा है। (5) से कवीर के यहाँ ज्ञामाजिक असमानता के छिलाफ़ मात्रोशूर्ण भावनाएँ दिखाई देती हैं, जैसे ही मीरा को पितृसत्तात्मक स्थामाजिक संरचना के अतिर ओते हुए की अंची-अंची दीवारे लंघकर, पातिशत धर्म के बंधनों को काटकर बाहर आ जाना असाधारण जाति थी। इस असाधारण साहस ने ही उनके दुर्विकासन की वह तड़प पैदा की थी, जो ऊपर पद में उत्तीर्णकर्ता

B.A. 3
अंकुप खिंच

विशेष अध्ययन (संग्रह वाक्ता)

मीराभाई

पद सं ५४

जोड़ियारी भीड़ी है दुष्टों के शूल (१)

दृष्टि निल वा बाह्यत नहीं बहुत भाव भूल (२)

तोड़त जो भूल नहीं सज्जी जैसे प्रबली के भूल (३)

मर्म लौं प्रभु उमरे दूसरे विक्र लगत विद्वां शूल (४)

जें - देव विलंब
विद्वां - हृष्ण

छपाच्चा :

मीरा कृष्ण के बिरह में अपनी पाँड़ी वा बाजी करते हुए गा
रही है - " जोड़ी से प्रीत लगाना ही दुःख वा शूल (यानी कारण) है (१)
पहले तो वह (योगी), द्वितीय-मिल कर विश्वास प्रीत लेता है,
तरह-तरह की जाते बनाकर छोटा है और बाद में (जब स्वार्थ तथा
जाता है) तब भूल भाव है (२)

प्रीति को वह (योगी) हेतु आसानी से छोड़ कर देता है, परीत वाई
जैसे पल में विभाव लाचे प्रबली वा शूल डाल ले तोड़ देता है (३)
मीरा कहती है कि है छिप प्रभु ! तुम्हारे दर्शन बिना हृष्ण (हिंदू)
में शूल यानी कोटे-ले चुभते हैं, अर्थात् तीक्ष्ण वेदनानुभूति
होती है (४)

मीरा की विद्वां भावना को समझने की आवश्यकता है। वह एक
भक्त की अपने उपास्य के प्रति तीव्र प्रेम भावना से दौदा हुई भावना है
भगवद्गीता की दुर्बिता विद्वां की वेदना को बहुत नीखा बना देती है,
इस भावना लौकिक पद्धति भी है, सांसारिक प्रेम के ऐसे निहित स्वार्थों
को देखकर भक्त वा मन इस पाखड़ ले विसुख हो जाता है और
सच्चे निःस्वार्थ प्रेम नी खो जैसे वहां हो जाता है। इसलिए भावना भावना
के ऐसे कठोर स्वार्थी सामाजिक उपास्य भी हैं,

B.A. 3

काव्यशास्त्र

दृढ़

द्रुत विलोबितः

इस छंद में क्रमशः नगण, भगण, भगण और सह-रगण आते हैं। 12 वर्ष पर याति (लकना) आती है।

गण को इस शब्द से पहचानते हैं —

यमाताराजभानसभगा

इस शब्द में अंतिम तीन अक्षर लेवल पूरक के लिए जोड़ दिये गये हैं। गण य से लेकर स तक हैं। पहला गण है अगण पानी य से शुरू करके तीन अक्षर तक → यमाता और 2 दीर्घि। उत्तरज - 'सहरा' शब्द। इसमें स हस्त है। उत्तरे आगे हा दीर्घि और रा दीर्घि। इसी प्रकार —

अपार्ट 1 हस्त

यगण - यमाता = 1 हस्त, 1 दीर्घि, 1 दीर्घि = 1 s s

मगण - मातरा = 1 दीर्घि, 1 दीर्घि, 1 दीर्घि = s s s

तगण - ताराज = s s 1

रगण - राजभा = s 1 s

भगण - भनभान = 1 s 1

भगण - भानस = s 1 1

नगण - नसल्ल = 1 1 1

सगण - सलगा = 1 1 s

द्रुतविलोबित का उदाहरण →

नगण	भगण	भगण	रगण
1 1 1	5	1 1 5 1	1 5 1
1 2 3	4	5 6 7 8	9 10 11

द्वितीय लो अवस्थान समीप धा → याति ॥

1 1 1	5	1 1	5 1 1	5	1 5
1 2 3	4	5 6	7 8 9	10	11 12

गण धा कुदू लोहते धा पला

1 1	5	1 1	5	1 1	5 1 5
1 2	3	4	5	6	7

शिरोधा पुर धा अव राजती

1 1 1 5	1 1	5 1 1	5	1 5
1 2 3 4	5 6	7 8 9	10	11 12

कमलिमी कुल वलभारी को पुरामा

मंदाकांता: इसमें प्रत्येक चरण में 17 अक्षर होते हैं। कुमारः मगण, भगण, नगण, तगण और अंत में दो शुल्क अक्षर होते हैं।

उपाधन:

मगण	भगण	नगण	तगण	तजण	शुल्क-शुल्क
s s s s	1 1 1	1 1 1	s 1	1 1 1	1 1
पी मैं कोई विद्धि उड़ता राम से देखती है।	5 6 7	8 9 10	11 12	13	14 15 16 17
1 2 3 4					

तो उत्तरांकानश विवरण हो चित्त में लें चर्चा है।

होते मेरे निष्ठित तन में पंख जो पंछियों से।

तो	यो	ही	मैं	समुद्र	उड़ती	राम	की	पास	जाती।
1 1	1 1	1 1	1 1	1 1	1 1	1 1	1 1	1 1	1 1

शिथरिणी:

इस चरण में 17 अक्षर। कुम यह रहता है— यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और अंत में लघु, शुल्क।

जीतो:-

यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	लघु-शुल्क
1 1	1 1	1 1 1	1 1	1 1 1	1 1
ठहरा	कौसी	प्यारी	प्रकृति	तिप्पि के	पद्मगुण की।
					= 17 अक्षर

नथा नीला ओढ़े वसन चटकीला गगन का।

इन्द्रवज्ञा:

इस चरण में तगण, तगण, जगण और दो शुल्क आते हैं। इस चरण में 11 अक्षर रहते हैं।

तारा दिवानी मधु नेट की है।

जीनो सिथाना धुन प्रेम का है।

बाहें सुदानी मुझको सुलाए। = 11 अक्षर

गाना सुनाए मनवा मिलाए।

कविता :

इसके प्रत्येक वरण में तीन वर्ज होते हैं। वर्जों का युग निश्चित नहीं होता है अर्थात् गणों की कोई व्यवस्था-नहीं होती। 16 में तथा 15 के वर्ज पर भूति होती है और दूर वरण का अंतिम वर्ज गुल होता है।

उदाहरण :

याति	याति
↓	↓
अँचे धोर मंदूर के आंदर स्थानार्थी रहन वारी, कँचे धोर मंदूर के आंदर रहाती है।	16
	→ 15 = 31
कंद भूल भोज करौं कंद भूल भोज करौं, तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती हैं।	
<u>शूष्ण सिधिक्षिण आंग शूष्ण सिधिक्षिण आंग, विजन इलाती तेष विजन इलाती हैं।</u>	
<u>शूष्ण अनति लिपरण वीर तेरे शास, वगान जड़ती तें वै नगन जड़ती हैं॥</u>	
16 ↑	↑ 15 = 31
याति	याति-

स्वेच्छा :

22 से 26 वर्ज दूर वरण में हो सकते हैं। इस छंद में गणों की एक निश्चित व्यवस्था होती है। (-पारो वसें-चरणों में वर्ज दांख्या समान रहती। अदि प्रभास वरण में 22 अश्वर हैं तो शेष तीनों चरणों में भी 22 अश्वर होते हैं।)

उदाहरण :

मातुस हौं तो नहीं साधान वल्ल ब्रज गोकुल गांव के भवरत । - 24
जो पलु हौं तो कादा बस मेरो चरो नित नंद की धोनु मस्सारन । - 24
पाहन हौं तो वही जिरि लो जो धारयो कर छज पुरंदर कारन । - 24
जो जग हौं तो बसेटो करौं जिलि कालिंदि छूल केंदंग की डारन ॥ - 24

दृष्टियः: यह छह पांक्तियों का छंद होता है। यह के छंदों से मिलकर बनता है। पहली भार पांक्तियाँ रोला छंद से होती हैं। अंतिम दो पांक्तियाँ ३ल्लाल छंद से होती हैं। मात्राओं की गणना देते हुए उदारज्ञ निम्नलिखित हैं—

उदाहरण १. अष्टत्र को बदल, मन्त्र मत श्रिष्टाचारी $11+13 = 24$ मात्राएँ

रोला → { २. जनलि में कृ काम, कृ वनता वाह सारी " "

३. कुपल रह आरमान, कुशालन है वीमारी " "

४. कौसा लवा विद्यान, कुर्वी वनता लेचारी " "

३ल्लाल → { ५. अर्द्धि छवि के लोग ही, अवं सत्ता म लाइ इ $13+13 = 26$

६. लोकतंत्र में आधा, फिर थे आप जगाइ $13+13 = 26$ मात्राएँ

कुंडलिया :

यह भी छह चरणों का छंद है। अंतर केवल इतना है कि इसका प्रारंभ 'धोहे' से होता है और बाद की भार पांक्तियाँ 'रोला' छंद से होती हैं। दोष जिस वाक्यांश के लाभ उपल होगा, उसी वाक्यांश के लाभ रोला उपल होगा, यह भी एक शर्त है। पुरे कुंडलिया का पहला और उपरियी शब्द एक होता 'पाइरि', यह दूसरी शर्त है।

उदाहरण —

दोष → { १. ममता ने सासार को, दिया प्रेम का धूप $13+11 = 24$ मात्राएँ माँ के झांचल में खिली, सदा नेह की धूप $13+11 = 24$

२. सदा नेह की धूप, पार का ढग निराला $11+13 = 24$ मात्राएँ श्रुति और बांहति- सदा निवाला

महावीर कविराप दिया जब दुख दुनियान $11+13 = 24$

सिर पर धध सदैव, रखा माँ की ममता ने $11+13 = 24$

$11+13 = 24$

कुंडलिया

रोला → {

१. ममता ने सासार को, दिया प्रेम का धूप $13+11 = 24$ मात्राएँ माँ के झांचल में खिली, सदा नेह की धूप $13+11 = 24$

२. सदा नेह की धूप, पार का ढग निराला $11+13 = 24$ मात्राएँ श्रुति और बांहति- सदा निवाला

महावीर कविराप दिया जब दुख दुनियान $11+13 = 24$

सिर पर धध सदैव, रखा माँ की ममता ने $11+13 = 24$